# छिपकलियों से सीखें चिपकना

**पाठ्य पुस्तकें बताती आई हैं कि छिपकली अपने पैरों की गद्दी के नीचे अस्थायी निर्वात यानी वैक्यूम की बदौलत चिकनी दीवाल पर चिपक जाती हैं। डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन बता रहे हैं कि यह सही नहीं है। यह क्षमता शोधकर्ताओं के बीच खोजबीन का विषय रही है। इसका अनुकरण करने के प्रयास भी किए जा रहे हैं।**

चींटियां और मधुमक्खियां हमें सहयोग करना सिखाती हैं। मकड़ियों ने हमें यह सुराग दिया कि अत्यंत महीन और मज़बूत धागा कैसे बनाया जाता है। बैक्टीरिया और फफूंद ऐसे अणु बनाते हैं जिनका उपयोग हम दवाइयों में करते हैं।

क्या छिपकली जैसे प्राणी से भी हम कुछ सीख सकते हैं? अधिकांश लोग तो छिपकली से नफरत करते हैं मगर फिर भी यह हमारे आकर्षण का केंद्र है। हिंदू माइथॉलॉजी में छिपकलियों की आवाज़ों का सम्बंध भविष्य से जोड़ा जाता है। इसी प्रकार से निष्ट-अनिष्ट के कथन में व्यक्ति के शरीर पर छिपकली के गिरने को महत्व दिया जाता है और यह भी देखा जाता है कि वह किस दिशा से गिरी थी। हम कम से कम इसकी इस क्षमता पर तो दांतों तले उंगली दबा ही सकते हैं कि यह किस दक्षता से दीवार पर चढ़ जाती है, छत पर उल्टी चल लेती है।

छिपकलियों और इसके बड़े मैदानी सम्बंधियों - गोह - की यह क्षमता शोधकर्ताओं के बीच खोजबीन का विषय रही है। इसका अनुकरण करने के प्रयास भी किए गए हैं। पिछले दशक में हुए शोध कार्य ने इसकी व्याख्या भी की है। हमारी स्कूली पाठ्य पुस्तकें बताती आई हैं कि छिपकली अपने पैरों की गद्दी के नीचे अस्थायी निर्वात यानी वैक्यूम बना लेती हैं और इसी की बदौलत वे चिकनी दीवाल पर चिपक जाती हैं। यह सही नहीं है।

छिपकली के चिपकने का राज़ उसकी उंगलियों पर महीन रोम की कतारों में छिपा है। प्रत्येक रोम के सिरे पर कई मुंह होते हैं। नेचर पत्रिका के एक अंक में डॉ. केलर ऑटम और रॉबर्ट फुल ने बताया था कि ऐसे प्रत्येक 'मुंह' की चिपकने की क्षमता ही छिपकली को कलाबाज़ी करने में माहिर बनाती है।

प्रत्येक उंगली की गद्दी पर ऐसे सैकड़ों रोम होते हैं। इन्हें *सेटा* कहते हैं। प्रत्येक रोम में अनगिनत उभार या रोएं होते हैं। इन्हें *स्पैचुला* कहते हैं।

प्रत्येक *सेटा* एक झाड़ू की तरह होता है। या कहें ब्रश जैसा होता है जिसके अंत में बारीक-बारीक रोएं निकले होते हैं। ऐसा प्रत्येक रोम यानी *स्पैचुला* चिकनी से चिकनी सतह को भी पकड़ने की क्षमता रखता है - सतह सूखी हो या गीली, कोई फर्क नहीं पड़ता। हज़ारों *स्पैचुला* की सामूहिक क्रिया हरेक *सेटा* को चिपकने की ज़बर्दस्त ताकत देती है। एक अकेला *सेटा* किसी छोटी-मोटी चींटी को उठा सकता है। और ये किरेटीन नामक पदार्थ के बने होते हैं। यह वही पदार्थ है जिससे हमारे बाल और नाखून बनते हैं।

यदि एक छोटी-सी छिपकली की यह ताकत है तो ज़रा गोह (गेको) की कल्पना कीजिए जो एक फुट या उससे भी लंबी होती है और जिसकी उंगलियां हमारी उंगलियों बराबर होती हैं। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि शिवाजी ने गोह की मदद से रायगढ़ के किले पर चढ़ाई की थी।

## क्या ताकत

स्पैचुला को किसी सतह से चिपकने में मदद करने वाले बल की प्रकृति क्या है? आश्चर्य की बात है कि यह बल उन बलों में से है जिन्हें दुर्बल बल कहा जाता है। इस बल का नाम है वान डर वॉल बल।

दरअसल यह एक अविशिष्ट बल है यानी किन्हीं भी दो चीज़ों के बीच लग सकता है। यह किसी रासायनिक बंधन से हज़ारों गुना कमज़ोर होता है। यह एक दोगला बल है - एक नैनोमीटर के चौथाई भाग तक तो यह आकर्षण बल है मगर यदि चीज़ें इससे अधिक निकट आएं तो यही विकर्षण

बन जाता है।

इसी वान डर वॉल बल के कारण हीलियम जैसी अक्रिय गैसों के परमाणु भी पास-पास आकर तरल हीलियम के रूप में संघनित हो जाते हैं। मगर आकर्षण की ऊर्जा इतनी कम होती है कि हीलियम को तरल बनाने के लिए बहुत ठंडा करना पड़ता है - शून्य से 300 डिग्री सेल्सियस नीचे।

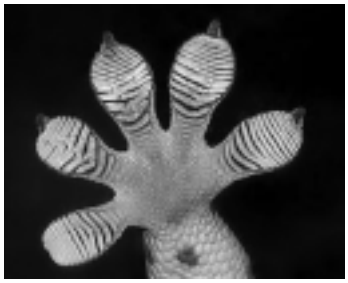

इसके अलावा नैनोमीटर दूरियों को देखते हुए, केशिका बल भी चिपकने में मदद करता है। केशिका बल वह बल है जिसकी वजह से जब किसी पतली नली को द्रव में रखा जाता है तो द्रव नली में थोड़ा चढ़ जाता है। जितनी पतली नली होगी, द्रव उतना ऊपर तक चढ़ेगा।

प्रत्येक स्पैचुला का बल तो बहुत कमज़ोर होता है मगर जब हज़ारों स्पैचुला एक साथ काम करते हैं तो ताकत बहुत बढ़ जाती है।

सवाल यह उठता है कि जब यह बल इतना ज़ोरदार है, तो छिपकली चलती कैसे है। जवाब यह है कि स्पैचुला को थोड़ा-सा मोड़ दीजिए और बल एकदम कम हो जाता है। दरअसल चलते वक्त छिपकली स्पैचुला को सीधा-मुड़ा, सीधा-मुड़ा करती रहती है और आसानी से आगे बढ़ती है।

छिपकलियों और गोह के इस गुण ने पदार्थ वैज्ञानिकों और रासायनिक इंजीनियरों को ऐसे पदार्थ बनाने की प्रेरणा दी है जो जैव-अनुकूल हों (यानी जिनका उपयोग मानव शरीर में किया जा सके, कोई हानिकारक असर न हो) और जैव-विघटनशील भी हों (यानी घाव या क्षति की मरम्मत होने के बाद शरीर के एंज़ाइम इसे नष्ट कर सकें)।

यह सही है कि इस संदर्भ में किरेटीन या अन्य प्रोटीन उपयुक्त होंगे मगर इनके साथ दिक्कत यह है कि इन पदार्थों की घुलनशीलता तथा ढलने की क्षमता बहुत कम है।

कुछ संश्लेषित पोलीमर इस मामले में बेहतर लगते हैं। जैसे, पोलीग्लिसरॉल सिबेकेट एक्रिलेट (पी.जी.एस.ए.)। सबसे पहले पी.जी.एस.ए. का उपयोग हार्वर्ड विश्वविद्यालय/एम.आई.टी. के रॉबर्ट लैंगर ने किया था। हाल के एक शोध पत्र में इस समूह ने पी.जी.एस.ए. से एक जैव-अनुकूल व जैव-विघटनशील ऊतक-एडहेसिव तैयार किया है। इसके लिए उन्हें सबसे पहले तो *सेटा* और *स्पैचुला* की अनुकृति बनानी पड़ी। इस काम के लिए उन्होंने सिलिकॉन पर नैनो-नलिकाओं का एक सांचा बनाया। इस पर पी.जी.एस.ए. फैलाया गया। इस पर पराबैंगनी प्रकाश डालने पर लचीले पोलीमर पर खंभों का पैटर्न बन गया जो लगभग वैसा था जैसा गेको की उंगलियों की गद्दी का होता है। जब पी.जी.एस.ए. के इस ढांचे को जैव ऊतक पर रखा गया तो पता चला कि ये खंभे जितने पतले और जितनी दूर-दूर होते हैं, चिपकने की क्षमता उतनी अधिक होती है।

दूसरी बात यह थी कि संश्लेषित गेको नकल को तब भी काम करना चाहिए जब सतह गीली हो। यह गुण हासिल करने के लिए शोधकर्ताओं ने पी.जी.एस.ए. के नैनो पैटर्न पर ऑक्सीकृत डेक्स्ट्रॉम का लेप कर दिया।

गीलेपन में चिपकने की इस क्षमता को बढ़ाने के लिए उन्होंने पी.जी.एस.ए. में एक अन्य पोलीमर पी.ई.जी. मिला दिया और फिर उपरोक्तानुसार लेप किया।

इस तरह से जो गेको नकल प्राप्त हुई वह परख नली में सुअर की आंत के ऊतक पर बहुत अच्छे से चिपकती थी। इसके अलावा चूहे के ऊतक पर वास्तविक परिस्थिति में चिपक जाती थी। इसके कोई हानिकारक प्रभाव भी नहीं हुए। यानी यह पदार्थ जैव-अनुकूल है।

इस तरह के ऊतक-एडहेसिव बनाने का मकसद यह है कि प्रकृति किसी क्षति/चोट की मरम्मत का काम करे और इसमें मददगार कृत्रिम पदार्थ अपने आप घुलकर गायब हो जाए, पीछे कोई निशान न छोड़े।

इस पदार्थ की जांच मैक्रोफेज कोशिकाओं द्वारा बनाए जाने वाले एंज़ाइमों के साथ की गई। मैक्रोफेज वे कोशिकाएं होती हैं, जो बाहरी पदार्थों को नष्ट करती हैं। इस जांच में पता चला कि यह पदार्थ कुछ ही हफ्तों में घुलने लगा। शोधकर्ताओं का निष्कर्ष है कि "छिपकली प्रेरित एडहेसिव का उपयोग घावों की मरम्मत तथा टांकों वगैरह को सुदृढ़ बनाने के लिए किया जा सकता है।" ***(स्रोत फीचर्स)***